दलित साहित्य का स्वरूप: प्रमुख मुद्दे और चुनौतियाँ

डॉ.वंदना शर्मा
एम.ए.(स्वर्ण पदक)राजस्थान केंद्रीय विश्वविद्यालय, (नेट जे.आर.एफ.) एम.फ़िल. पीएच.डी (स्वर्ण पदक).- हैदराबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय
सहायक आचार्य NCERT(NIE) नई दिल्ली

वर्ग विभाजन की प्रक्रिया ने समाज को दो वर्गों में विभाजित करके रख दिया, ऐसा नहीं है की एकदम से समाज को वर्ण और वर्ग आधारित दो खाइयों में बाँट दिया गया, यह प्रक्रिया धीरे-धीरे चली और अंत में जिसके पास उत्पादन के साधनों का स्वामित्व था वह उच्च वर्ग बन गया और जो उत्पादन के साधनों से विहिन कुनबा था उसको निम्न वर्ग करार दिया गया ।शोषण की प्रक्रिया से ही हमारे समाज में वर्गो का विभेदीकरण हो जाता है ।एक वर्ग शोषक और दूसरा शोषित ।यह जो शोषित वर्ग है उसे प्राय: दलित जैसे शब्द के आवरण में बाँध दिया जाता है ।भारतीय समाज में शोषण का यह स्वरूप भारतीय समाज में धर्म, जाति, अर्थ आदि के आधार पर किया जाता है ।दलित शब्द को लेकर खूब वाद-विवाद हुआ लेकिन मूल उद्देश्य यह है कि कोई भी दलित साहित्य चाहे वह किसी भी भाषा में लिखा गया हो उसका मुख्य उद्देश्य क्या होना चाहिए? वह साहित्य दलित जीवन की समस्याओं को सशक्ति के साथ प्रकट करने का जिम्मा ले, तभी वह दलित साहित्य की श्रेणी में आ सकता है ।मुख्यतया: दलित साहित्य वर्णवादी, जातिवादी, मनुवादी, पुरोहितवादी, हिंदुत्ववादी सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों के चिंतन अथवा मानव मुक्ति के सरोकारों के साथ समाज में व्याप्त भेदभावपरक व्यवस्था के विरोध में लिखा गया साहित्य दलित साहित्य कहलाता है ।हिंदी दलित साहित्य का प्रमुख उद्देश्य शोषित, पीड़ित समाज का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करना है, वर्तमान समय का दलित लेखन दलित जीवन के उत्पीड़न, अवहेलना, निरादर, आदि के प्रति उनकी भावनाओं के साथ आस्था दिखाता है,लेकिन दलित जीवन की त्रासदी की यदि बात की जाये तो इसका वर्चस्व सम्पूर्ण भारत में विद्यमान हैं ।

अलग-अलग भाषाओं में इनकी संवेदना पर साहित्य लिखा गया, मूलतः दलित के प्रति सहानुभूति का भाव इनमें दिखाई पड़ा ।कहीं दलित लेखकों की स्वयं की स्वानुभूति थी तो कहीं सहानुभूति के रूप में साहित्य बनकर तैयार हुआ ।दलित साहित्य में गुस्सा और आक्रोश का स्वर होना लाजमी है, होना भी चाहिए क्योंकि जिस व्यवस्था के तहत ये आजादी के बाद भी यदि गुलाम बने रहे तो देश की आजादी का क्या फायेदा? आजादी के बाद संवैधानिक रूप से तो इनको समानता मिल गई लेकिन वास्तविकता कुछ और ही थी ।समाज का वह वर्ग यह स्वीकारने को तैयार नहीं था कि दो असमान वर्ग एक साथ बैठकर भोजन कैसे कर सकतें हैं? एक ही घड़े से पानी कैसे पी सकते है? शायद इससे उनके रोब में कमी आ जाए या फिर वे अपना वर्चस्व खो दे इस मानसिकता से उच्च वर्ग अपने-आपको बाहर नहीं निकाल पा रहा था ।इस स्थिति के प्रकटीकरण का जिम्मा दलित साहित्य ने उठाया ।एक यही माध्यम था जिससे दलित जीवन की विभीषिका को प्रकट किया जा सके ।आप सहानुभूति या स्वानुभूति कह लीजिये दलित के प्रति इस साहित्य ने समानुभूति जगाई ।शाब्दिक अभिव्यक्ति के माध्यम से उनकी अनछुई, अनजानी पीड़ा को दलित साहित्य प्रकट करता है ।

वैसे भारत में पूंजीवाद, वर्णाश्रम शासन व्यवस्था, साम्प्रदायिकता हावी रहते हैं लेकिन आजादी के बाद जिस यथार्थ की कल्पना की गई थी वह शायद पूरा होने में समय लगेगा ।विश्वनाथ त्रिपाठी अपने आलेख में इस प्रकार लिखतें हैं:- "स्वाधीन भारत की प्रमुख उपलब्धियाँ दलित चेतना व नारी चेतना का प्रसार-विस्तार है ।यह काम पूरा नहीं हो पाया है ।बहुत कम हो पाया है ।बहुत अधिक होने को है ।आज दलित चेतना ही नहीं दलित शक्ति की बात की जाती है ।सभी राजनीतिक दल स्पर्धा करते हैं कि उनके यहाँ दलित कितनी अधिक संख्याँ में हैं ।यह चेतना नगरों से ज्यादा गाँवों में व्याप्त हो गई है|" भारतीय दलित साहित्य का स्वरूप काफ़ी विस्तृत है जिसके अंतर्गत संविधान में उल्लेखित लगभग सभी भाषाओं में उल्लेख किया जाता है, इसे प्राय: उत्तरी भारत की भाषाओं और दक्षिण भारत की भाषाओं के साहित्य में विभाजित करके देखा जाता है ।दक्षिण की भाषाओं में प्रमुख रूप से तमिल, तेलगु, कन्नड़, मलयालम, उड़िया, आदि भाषाओं का नाम लिया जा सकता है, उत्तर की भाषाओं में हिंदी गुजराती, उर्दू, पंजाबी, आदि भाषाओं में दलित साहित्य लिखा गया । सामाजिक परिवर्तन की यह क्रांति दलित साहित्य के रूप में हमारे सम्मुख आयी ।

दलित साहित्य के सम्मुख अनेक चुनौतियां हैं जिसका उसे सामना करना है उसमें सबसे पहली यह कि स्थापित व्यवस्था को सुधारना ।जो हो गया सो हो गया अब क्या करना है? यह दलित साहित्य और साहित्यकारों पर सबसे बड़ी जिम्मेदारी है ।दलित स्वयं साहित्य लिखे, उसे सामने लाये, अपना इतिहास लिखें, इन सबमें इन्हें प्रतिरोध का सामना करना पड़ सकता है ।

जिस संस्कृति की कल्पना अभिजात संस्कृति के रूप में की गई है उसको बदलना भी दलित साहित्य के लिए एक चुनौती है ।प्राचीनकाल से ही दो वर्गों की संस्कृति को बताने का प्रयास किया जाता रहा है ।उस स्थापित व्यवस्था के प्रति बनी हुई मानसकिता को परिवर्तित करना ।

दलितों के लिए सम्मानजनक स्थिति के वातावरण का निर्माण करना भी भारतीय दलित साहित्य के सम्मुख एक चुनौती है ।भारतीय वर्ण व्यवस्था में परिचालित मानसिकता, और नये मानदंड गढ़ना भी एक असहज कार्य है ।दलित साहित्य के नामकरण, दलित साहित्य की पहचान और दलित चेतना के विकास की समस्या दलित साहित्यआंदोलनों के उद्देश्य की भी प्रमुख समस्या रही है ।क्या विमर्शकार दलित जीवन के अनुकूल समाज में होने वाले परिवर्तनों को स्वीकार कर पायेगा? दलित साहित्य के लेखन में सामाजिक बन्धनों से मुक्ति भी एक प्रमुख चुनौती है ।जब तक दलित समाज में व्याप्त रूढ़िवादी मानसिकता से बाहर नहीं निकल जाता तब तक दलित जीवन और लेखक दोनों के लिए ही समस्या है, दलित समाज स्वयं

अपने में ही एक और दलित ढूंढ लेता है, कि हम तो इनसे ऊपर है ।इस प्रकार की मानसिकता है ।

कई बार हिंदी में दलित साहित्य पर यह आक्षेप लगाया जाता है कि यह विद्रोह का स्वर है, इसमें निराशा है, आशावादिता नहीं दिखाई पड़ती है, यह शोषितों की पुकार है ।जैसे शरण कुमार लिम्बाले लिखते है कि " मैं मनुष्य हूँ, मुझे मनुष्य के सभी हक मिलने चाहिए|" यह भी आरोप लगाया जाता है, कि दलित साहित्य में दीन-दुखियों का आक्रोश एवं रूदन है ।दयानन्द बटरोही कहते है कि "दरअसल दलित लेखकों का आक्रोश, आक्रोश नहीं बल्कि वर्षों की चिढ़ है, यह आक्रोश, वेदना, विद्रोह, क्रोध और दीन-दुखी, उत्पीड़ित-शोषितों की अभिव्यक्ति है|" इस प्रकार की सोच दलित चेतना को आगे बढ़ने से रोकती है ।लेखकों से यह अपेक्षा की जाती है कि वह इस प्रकार की भ्रांतियों को साहित्य लेखन के माध्यम से दूर करने का प्रयास करे ।सामाजिक वेदना के परिणामस्वरूप दलित जीवन की अभिव्यक्ति हुई ।वह उनकी मूक आवाज बनकर आया ।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कहा सकता है कि हिंदी भाषा के साथ-साथ अन्य भाषाओं में दलित लेखन में चुनौतियां समान है बस उनका संदर्भ अलग-अलग है ।उनका प्रदेश, क्षेत्र अलग है लेकिन समस्याएं वही है ।समाजगत रूढ़ियों को भी इन्हें अपने-आप से दूर करने का प्रयास करना चाहिए ।विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक आंदोलनों के माध्यम से इनमें समानता लाने का प्रयास किया गया है लेकिन यह समानता इतनी जल्दी नहीं आने वाली ।इसके लिए दलित साहित्य और दलित समाज और सम्पूर्ण समाज को ग्रहण करने की भावना अपनाकर, प्राचीन रूढियों को त्यागकर दलित साहित्य और दलित जीवन का उद्धार हो सकता है ।इसके मूल में शिक्षा का भी खासा योगदान हो सकता है ।शिक्षा के माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति शिक्षित होकर, आर्थिक रूप से संबल होकर अपने समुदाय के हक़ के लिए लड़ सकता है ।

****

संदर्भ ग्रंथ:-

1.https://www.outlookhindi.com/story/magazine-1423
2.शरण कुमार लिम्बाले, 'दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र', पृ.सं. 20
3. दयानंद बटरोही, दलित साहित्य (वार्षिकी) (2007-2008), पृ.सं.24

संत कबीर और तुलसी के श्रीराम

रमेश प्रसाद पटेल
शोधार्थी-
(हिन्दी विभाग) अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

डॉ. अमित शुक्ला
शोध-निर्देशक (हिन्दी विभाग)
शा. ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय रीवा (म.प्र.)

शोध सारांश - कबीर के राम पर सोचते हुए मेरे मन में कई सवाल उठते हैं। कबीर के राम क्या हैं? परम्परा से आते हुए 'राम' और कबीर के राम में क्या अंतर है? कबीर विरोध और असहमति के जोश में निर्गुण राम को अपनाते हैं या इसके पीछे कोई ठोस सामाजिक कारण है? इसी सवाल से जुड़ा एक और सवाल है कि सगुण राम में ऐसी क्या अपर्याप्तता थी जिसके चलते कबीर को निर्गुण राम को चुनना पड़ा? कबीर ने निर्गुण राम की भक्ति की तो उसका विरोध हुआ क्या? अगर हाँ, तो क्यों? इस विरोध के पीछे सिर्फ भक्ति की प्रतिद्वंद्विता थी या इसके पीछे भी कोई सामाजिक कारण है? ये चंद सवाल ऐसे हैं जो कबीर के राम पर गहराई से सोचने को मजबूर कर देते हैं। कबीर के राम निर्गुण हैं, निराकार हैं, अगम्य हैं, इसकी चर्चा खूब हुई है। सगुण-निर्गुण के आध्यात्मिक विवाद से परे होकर भी क्या कबीर के राम को देखा जा सकता है? मैंने इसी प्रश्न पर अपना ध्यान केन्द्रित किया है।

व्याख्या - कबीर के पहले और बाद में राम-भक्ति की एक परम्परा मिलती है। वाल्मीकि से लेकर तुलसी और आधुनिक काल में निराला की कविताओं में राम की गूँज मिलती है। यह जगजाहिर है कि कबीर के राम पुराण प्रतिपादित राम नहीं हैं। उनके राम और परम्परागत राम में बुनियादी अंतर है। वाल्मीकि के राम तपस्वी शम्बूक की हत्या करते हैं क्योंकि शम्बूक शूद्र हैं। भवभूति के राम भी शम्बूक की हत्या करते हैं। यह सही है कि भवभूति के राम को शम्बूक की हत्या करते समय द्वंद्व होता है, पर हत्या करते हैं। तुलसी के राम आदर्श पुरुष हैं, पर यह प्रसंग तो खटकता ही है कि उनके प्रिय भाई लक्ष्मण शूर्पणखा की नाक इसलिए काट लेते हैं कि वह प्रणय-निवेदन कर रही थी। निराला के राम पर आवरण अवतारी राम का है, पर वे मानव हैं। राम की यह उक्ति - 'मित्रवर विजय होगी न समर' राम के भगवान् चरित्र को हिलाकर रख देती है।

कबीर के राम एक 'पावरहाउस' हैं, जहाँ से वे जातिवाद से लड़ने की शक्ति लेते हैं। उनके राम अवतारी कदापि नहीं हैं -

दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना,
राम नाम का मरम है आना।।

कबीर अपने राम को अवतारी राम की छाया से भी दूर रखना चाहते हैं। उनके राम 'कमलनयन' वाले नहीं हैं, फिर भी उनकी चेतना ज्यादा मानवीय है। कबीर अपने राम के साथ मानवीय सम्बन्ध स्थापित करते हैं - 'हरि मेरा पीव मैं हरि की बहुरिया'। अपने भगवान के साथ मानवीय सम्बन्ध की कल्पना करना बहुत बड़ी बात है। तत्कालीन समाज में शूद्रों के लिए मंदिर-